बहिरात्मा का स्वरूप

मिच्छा-दंसण-मोहियउ, परु अप्पा ण मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिण-भणिउ, पुण संसार भमेइ॥७॥

मिथ्यामति से मोहिजन, जाने नहिं परमात्म।
भ्रमते जो संसार में, कहा उन्हें बहिरात्म॥

अन्वयार्थ – (**मिच्छादंसणमोहियउ**) मिथ्यादर्शन से मोही जीव (**परू अप्पा ण मुणेइ**) परमात्मा को नहीं जानता (**सो बहिरप्पा**) यही बहिरात्मा है (**पुण संसार भमेइ**) वह बारम्बार संसार में भ्रमण करता है। (**जिण भणिउ**) ऐसा श्री जिनेन्द्र ने कहा है।

वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण ५, बुधवार, दिनाङ्क ०८-०६-१९६६
गाथा ७ से ९ प्रवचन नं. ३

योगसार, छठवीं गाथा चली। तीन प्रकार के आत्मा का वर्णन चला – परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा। जो परमात्मा.... यद्यपि परमात्मा जो है, उसकी शक्ति में अन्दर अन्तरात्मा और बहिरात्मा तो है परन्तु प्रगट पर्याय की अपेक्षा से यह बात ली है। **पर झायहि अंतरसहिउ बाहिरू चयहि णिभंतु।** परमात्मा का स्वरूप जानकर, अन्तरात्मा होकर, बहिरात्मपना छोड़कर, परमात्मा का ध्यान करना – यह इसका सार है। तीन प्रकार के (आत्मा) बतलाकर हेतु क्या? यह तीन प्रकार की प्रगट पर्याय की बात है। समझ में आया? परमात्मा हुए, उनकी शक्ति में तो बहिरात्मा, अन्तरात्मा है परन्तु प्रगटरूप से पर्याय है, उसकी यहाँ बात है न?

अन्तरात्मा है, उसे आत्मा का भान हुआ, उसे परमात्मा की शक्ति भी अन्दर पड़ी

है और बहिरात्मा की शक्ति भी पड़ी है। बहिरात्मा बाह्य है और रागादि को अपना मानता है परन्तु अन्दर शक्ति में अन्तरात्मा, परमात्मा की सब शक्ति पड़ी है। ऐसे तीनों प्रकार की शक्ति प्रत्येक जीव में है। उसमें से परमात्मा का स्वरूप जानकर, अन्तरात्मा होकर, बहिरात्मा को छोड़कर, परमात्मा को प्राप्त करने को ध्यान करना – ऐसा उसका सार है। अब सातवीं – **बहिरात्मा का स्वरूप** –

मिच्छा-दंसण-मोहियउ, परु अप्पा ण मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिण-भणिउ, पुण संसार भमेइ॥७॥

मिच्छादंसणमोहियउ लो! यह शब्द आया। उसमें मिथ्यादर्शन था न? उस **मिथ्यादर्शन से मोही जीव....** लो, यहाँ कर्म निकाल दिये। यहाँ नहीं लिखा। अनादि काल का आत्मा मिथ्या श्रद्धान से मोहित हुआ राग को अपना स्वरूप मानता है, पुण्य के फल को अपना मानता है, पाप के फल में दु:खी हूँ – ऐसा मानता है। इस प्रकार अनादि काल से भ्रम में ज्ञान के क्षयोपशम से ज्ञान का कुछ विकास हुआ तो पण्डिताई (करके) मैं पण्डित हूँ – ऐसा मानता है; क्षयोपशम कम हो तो दीन हूँ – ऐसा मानता है। यह सब मिथ्यादर्शन के कारण मोहित हुए जीव हैं। समझ में आया?

मेरा स्वरूप एक समय में त्रिकाल शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव है, उसका अन्तर में अनुभव – वेदन, आश्रय नहीं करता। मिथ्याश्रद्धा द्वारा कर्म के उदय से प्राप्त सामग्री – बाह्य और अभ्यन्तर.... समझ में आया? अभ्यन्तर अर्थात् क्या? राग-द्वेष। घातिकर्म के निमित्त से अन्दर हुआ पुण्य-पाप, राग-द्वेष का भाव। अघाति से प्राप्त बाहर में अनुकूल प्रतिकूल संयोग। इन सब चीजों में मैंपना स्वीकार करता हुआ, इनमें मैं हूँ, यह मेरे हैं – ऐसा मानता हुआ, मिथ्यादर्शन से मोहित हुआ है।

'परु अप्पा ण मुणेइ' परमात्मा को नहीं जानता.... समझ में आया? अपना स्वरूप शुद्ध चिदानन्दमूर्ति अनन्त दर्शन-ज्ञान सम्पन्न, समृद्धिवाला – वह कौन है, उसे नहीं जानता। मात्र बाहर की अल्पज्ञ अवस्था, राग अवस्था और बाह्य अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों में अपने अस्तित्व का स्वीकार, वहाँ दृष्टि पड़ी है। समझ में आया? कहो, थोड़ा पैसा मिले, वहाँ कहता है (कि) हम पैसेवाले हैं... पैसावाला नहीं – ऐसा कहते हैं।

अनन्त लक्ष्मीवाला-आनन्दवाला है। लक्ष्मीवाला नहीं, मूढ़ है। व्यर्थ में मानता है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु – व्यर्थ का होगा ? मजा करता है।

उत्तर – मजा करता है – भटकने का।

मिच्छादंसणमोहियउ देखो, यहाँ किसी कर्म के कारण मोहित है – ऐसा नहीं है। अपना स्वरूप शुद्ध चिदानन्दप्रभु अनाकुल आनन्द को स्पर्श किये बिना – उसे छुए बिना, इन बाह्य की चीजों – कर्म के निमित्त से प्राप्त बाह्य और अभ्यन्तर (चीजें) यह सब कर्म -सामग्री है; आत्म-सामग्री नहीं। शुभाशुभभाव होवे असंख्य प्रकार के शुभ-अशुभ या बाहर की अनन्त प्रकार की सामग्रियों की अनुकूलता-प्रतिकूलता, यह सब कर्म के फल का साम्राज्य है। उसमें चैतन्य नहीं है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया इसमें ? परन्तु इसे जहाँ पास हो, उसे मैं पास हुआ – ऐसा माने तो मिथ्यादर्शन से मोहित हुआ है – ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु – तो क्या फेल हुआ मानें ?

उत्तर – परन्तु इस अज्ञान में पास-फेल यह तो कर्म की सामग्री का फल है। इसलिए जरा क्षयोपशम हो और उसमें वह भाव आया, वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं है। मिथ्यादर्शन से मोहित प्राणी उसमें प्रसन्न होता है, उसे अपना स्वरूप मानता है – ऐसा इसमें कहते हैं। कहो, समझ में आया या नहीं ?

मुमुक्षु – बहुत लम्बी व्याख्या की है।

उत्तर – लम्बी होगी या नहीं। ए.... भरतभाई! लड़के किसलिए ना करेंगे ? आहा...हा...! **'परु अप्पा ण मुणेइ'** देखा ? भगवान पूर्णानन्द एक समय में अनन्त समृद्धि का, पूर्णस्वरूप प्रभु आत्मा का है। उसे न मानकर बहिरात्मा मूढ़ होकर उस अल्पज्ञ अवस्था को या विकार को या बाह्य संयोग को वह मिथ्यादृष्टि जीव, मोहित होता हुआ (अपना) मानता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – उसकी व्याख्या ही ऐसी की **'परु अप्पा ण मुणेइ'**।

उत्तर – '**ण मुणेइ**' नहीं जानता। यहाँ जानता नहीं और ऐसा मानता है। यह कहते हैं। समझ में आया? दो ही बात।

भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन, आनन्द का धाम अकेला, वह भी पूर्ण आनन्द, ज्ञान.... यहाँ अपूर्ण पर्याय की बात नहीं है। पूर्ण भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव एकरूप अभेद चिदानन्द प्रभु – ऐसे आत्मा की श्रद्धा न करता हुआ, न मानता हुआ, इतनी बड़ी सत्ता के स्वीकार को स्वीकार में न करता हुआ, अल्पज्ञ राग-द्वेष की पर्याय की सामग्री का स्वीकार करके वहाँ मोहित हुआ, मूर्च्छित होकर पड़ा है, उसे बहिरात्मा कहते हैं। अन्तर स्वभाव की प्रतीति नहीं और बाह्य की प्रतीति है, उसे बहिरात्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

अन्तर स्वभाव महान परमात्मस्वरूप है, परिपूर्ण आनन्द, ज्ञानादि है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान नहीं करता। '**परु अप्पा ण मुणेइ**' ऐसा। अपना परमात्मस्वरूप जो पूर्ण शुद्ध, ध्रुव परिपूर्ण है, उसे नहीं जानता परन्तु '**मिच्छादंसणमोहियउ**' बाहर में मोहित हो गया है। '**सो बहिरप्पा**' – उसे भगवान बहिरात्मा कहते हैं। देखो, '**जिणभणिउ**' है न? '**जिण**' अर्थात् वीतराग भगवान के मुख से ऐसी बात आयी, ऐसे जीवों को बहिर – उनका बाहर में ही लक्ष्य और उसका अस्तित्व उन्होंने माना है। समझ में आया? कहीं पुण्य की सामग्री कम-ज्यादा मिले, पाप की सामग्री प्रतिकूल कम-ज्यादा मिले, अन्दर में शुभाशुभभाव कम-ज्यादा हो और ज्ञान का हीनाधिकपना परलक्ष्य से उघाड़ हो, उसे आत्मा मानते हैं। समझ में आया? उतना आत्मा नहीं... उसे आत्मा मानते हैं। परन्तु भगवान परिपूर्ण स्वरूप अन्दर, परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जिसे आत्मा कहा है, वह आत्मा तो परमशुद्ध चिदानन्दस्वरूप है, परमात्मस्वरूप वह वस्तु है। ऐसी वस्तु का स्वीकार न करता हुआ, आदर न करता हुआ, आश्रय नहीं करता हुआ, परसन्मुखता के झुकाव में उसकी बुद्धि बाहर मारी गयी है। समझ में आया? विद्यमान पदार्थ भगवान पूर्ण प्रभु – ऐसे विद्यमान को न स्वीकार करके एक क्षणिक दशा ज्ञान की, दर्शन की, या क्षणिक राग की विकारी (दशा) या क्षणिक संयोगी दशा, उसे अपना मानता है, वह मिथ्यादर्शन के मूढ़पने के कारण मानता है। कहो, समझ में आया? **वही बहिरात्मा है।**

वह बारम्बार.... 'पुण संसारु भमेइ' ऐसा। पुनः संसार में भटकेगा। अनन्त काल तो भटका परन्तु इस बुद्धि से जिन्हें महत्व दिया है, उससे वह छुटेगा नहीं, पुण्य -पाप का भाव, संयोग और अल्पज्ञदशा आदि को महत्व दिया है, वह महत्व उसकी दृष्टि में से छूटेगा नहीं तो वह अल्पज्ञपना, विकार और संयोग उसका छूटेगा नहीं। चार गति में वह परिभ्रमण करेगा। कहो, समझ में आया? है या नहीं? सामने पुस्तक है? अनादि -अनन्त लिखा है न? यह श्लोक देखने को लिखा है। चौथा श्लोक देखने को लिखा है। कहो, समझ में आया?

'सो बहिरप्पा जिणभणिउ' वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी परमात्मा ने उसे – मिथ्यादृष्टि जीव को बहिरात्मा कहा है। कहो, इसमें कुछ समझ में आया? ऐ... ई...! लड़कों! इसमें कुछ समझ में आया या नहीं? एक ओर परमात्मा का पिण्ड प्रभु पूरा द्रव्य – वस्तु है – ऐसा कहते हैं। आत्मा में.... परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन, आनन्दादि पूर्ण वस्तु एक ओर पड़ी है, स्वयं प्रभु; और एक ओर उसकी वर्तमान दशा में अल्पज्ञ ज्ञान, अल्प दर्शन, अल्प वीर्य और राग-द्वेष की विपरीतता, पुण्य और पाप के कारण संयोग की अनुकूलता-प्रतिकूलता – इन सबको अपना मानता है। यहाँ मानता नहीं अर्थात् यहाँ उसे (अपना) मानता है, उसका नाम मिथ्यादृष्टि और बहिरात्मा कहा जाता है। वह बहिरात्मा पुनः पुनः चार गति में भटकने के भाववाला है। **संसारु भमेइ**। लो! वह भटकेगा। समझ में आया?

यहाँ इन्होंने जरा दृष्टान्त दिया है। जैसे, शराब पीकर चेष्टाएँ होती हैं, उन सब चेष्टाओं को मूर्ख अपनी मानता है। शराब पीकर फिर चेष्टा होती है न? ऐसा हो, ऐसा करे, और वैसा करे और ऐसा करे.... इन सब चेष्टाओं को अपनी मानता है। इसी प्रकार कर्म के संयोग से हुई चेष्टाएँ – विकार और पर, इन सबको मिथ्याभाव से मिथ्यात्वभाव की मदिरा पीया हुआ, उसके कारण कर्म के भाव से होनेवाली चेष्टाएँ, पुण्य-पापभाव आदि, कर्म मन्द पड़े और उघाड़ आदि ये सब कर्म की चेष्टाएँ हैं। कुछ समझ में आया?

इन सब भावों को अपना मानता है। समझ में आया? जैसे, शराब पीकर सब

चेष्टाएँ हों अथवा किसी के शरीर में भूत लगा हो, भूत आता है न अपने ? समयसार में। फिर भूत जैसी चेष्टा हो, वह मानता है कि यह मेरी (चेष्टा) हुई। ऐ... ई... ! आता है या नहीं ? हैं ? भूताविष्ट.... भूत प्रविष्ट किया हो, फिर यह हो तो जानता है कि यह सब मुझे होता है। मैं ज्ञानानन्द भिन्न आत्मा, यह भिन्न आत्मा है – ऐसा जिसे पता नहीं, वह भूत की चेष्टा वे मेरी। ऐसी अनादि काल के कर्म के संग की चेष्टा-अभ्यन्तर और बाह्य, यह सब मेरी है (ऐसा अज्ञानी मानता है)। समझ में आया ? वह भूत है, भूत !

यह किसकी बात चलती है ? पूरा नहीं जानता इसलिए जानना। एक समय में भगवान चिदानन्दमूर्ति पूर्ण है, उसकी दृष्टि करना अर्थात् उसकी सत्ता का स्वीकार होने पर अल्पज्ञ और राग-द्वेष, संयोग की सत्ता, सब का स्वीकार भूल जाएगा। कहो, समझ में आया या नहीं ? धीरुभाई ! आहा...हा... ! बड़ी मशीन और.... लो, चलते हों और पच्चीस, पचास, सौ लोग काम करते हों, दो सौ मनुष्य काम करते हों, हैं ?

प्रश्न – मशीन (यन्त्र) हों इसलिए चलाना न ?

उत्तर – वह भूत... सब कर्म की चेष्टाओं के सब फल हैं। पुण्य-पाप के फल बाहर में आये, अन्दर में घाति के फल राग-द्वेष आये, अल्पज्ञपना राग-द्वेष इत्यादि अन्दर आया। तीन कर्म के कारण अल्पज्ञ अल्पदर्शी और अल्पवीर्य, एक कर्म के कारण विपरीतता (आयी) और दूसरे कर्मों के कारण संयोग (प्राप्त हुए)। कहो, समझ में आया या नहीं ? क्या करना इसमें ? उत्साह भंग हो जाये, ऐ...ई... ! पढ़ने में पास होवे तो मिथ्यादर्शन से मानता है कि मैं अब कुछ बढ़ा। क्या होगा ? ऐ...ई... ! आशीष ! क्या करना इसमें ?

भाई ! बड़ा परमेश्वर एक ओर पड़ा है, उसे तू पीठ देकर, आड़ मारकर, उससे विपरीत अल्पज्ञानादि और रागादि विकल्प तथा संयोग उनका स्वीकार करे तो परमात्मा त्रिलोक के नाथ का अनादर और मिथ्यात्वभाव होता है। आहा....हा... ! समझ में आया, कुछ ? **'पुण संसारु'** भगवान ने उसे बहिरात्मा कहा है। **ऐसा श्री जिनेन्द्र ने कहा है।** वह चार गति में भटकता है। लो ! यह सातवाँ श्लोक (पूरा) हुआ। आठवाँ.... अपने तो इस श्लोक का सार-सार कहना है न ! यह सब कथन पढ़ेंगे तो पार कहाँ आवे ? यह तो सब आधार दिये हैं।

☆ ★ ☆

अन्तरात्मा का स्वरूप

जो परियाणइ अप्पु परु, जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु, सो संसारु मुएइ॥८॥

परमात्मा को जानके, त्याग करे परभाव।
सत् पंडित भव सिन्धु को पार करे जिमि नाव॥

अन्वयार्थ – (जो अप्पु परू परियाणइ) जो कोई आत्मा और पर को अर्थात् आप से भिन्न पदार्थों को भले प्रकार पहचानता है **(जो परभाव चएइ)** तथा जो अपने आत्मा के स्वभाव को छोड़कर अन्य सब भावों को त्याग देता है। **(सो पंडिउ)** वही पण्डित भेदविज्ञानी अन्तरात्मा है, वह **(अप्पा मुणहु)** अपने आप का अनुभव करता है, सो **(सो संसार मुएइ)** वही संसार से छूट जाता है।

☆ ★ ☆

अब, **अन्तरात्मा का स्वरूप।**

जो परियाणइ अप्पु परु, जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु, सो संसारु मुएइ॥८॥

क्या कहते हैं? **'जो अप्प परू परियाणइ' जो कोई आत्मा को और पर को आपसे भिन्न पदार्थ को भले प्रकार पहचानता है....** क्या कहा? जो कोई स्वरूप आत्मा पूर्णानन्द, पूर्ण ज्ञान को जाने और उससे भिन्न अल्प ज्ञान, राग-द्वेष और परचीज सब भिन्न है, उसे भी जाने। (जाने) दोनों को। जो कोई आत्मा.... समझ में आया? **आत्मा को और पर को....** दोनों को **आपसे भिन्न पदार्थ को भले प्रकार पहचानता है....** यह तो **'परियाणइ'** की व्याख्या की है। अपने से – भगवान पूर्णानन्द प्रभु से भिन्न सब, उसे **भले प्रकार पहचानता है....** जानता है। कहो, समझ में आया?

जो परभाव चएइ लो, वह **अपने आत्मा के स्वभाव को छोड़कर अन्य सब भावों का त्याग कर देता है....** क्या कहा? भगवान आत्मा...! देखो! अन्तर आत्मा की

व्याख्या! इस जगत में उसे पण्डित कहते हैं, उसे शूरवीर कहते हैं, उसे वीर कहते हैं... समझ में आया? कि जिसने आत्मा के पूर्ण स्वरूप अखण्डानन्द को जाना और उससे भिन्न विकार और पर आदि वस्तु को जाना कि यह है। दोनों के बीच में जिसे भेदज्ञान हुआ है... समझ में आया? वह '**परभाव चएइ**' वह अपना शुद्ध स्वभाव, परमानन्द के आश्रय से भिन्न परवस्तु, उसके उत्पन्न हुए भाव का आदर नहीं करता अर्थात् उन्हें छोड़ता है। वह व्यवहार, विकल्प को भी यहाँ छोड़ता है। अन्तर परमात्मा के स्वरूप को जानता हुआ, पर आदि के स्वरूप को जानता हुआ.... जानने का तो दोनों का कहा, फिर स्वभाव को जानता हुआ आश्रय करता हुआ विकारादि परिणाम को छोड़ता हुआ, छोड़कर।

'**सो पंडिउ**'! लो कम ज्ञान हो, अधिक हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। उसे पण्डित कहा जाता है। समझ में आया? वह ग्यारह अंग पड़ा हो या न पड़ा हो, प्रश्न का उत्तर देना आवे या न आवे उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरे को समझाना आवे या न आवे उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; मात्र चैतन्यानन्द प्रभु पूर्णानन्द का नाथ स्वभाव परमात्मा मेरा, उसे जाना, उससे विपरीत जितना पुण्य-पाप, विकार, कर्म की सामग्री आदि जाना कि यह पर है। उस स्वभाव का आदर करके पर का आदर नहीं करता, उसने परभाव को दृष्टि में छोड़ा है। देखो! यह त्याग हो गया। इस त्याग के बिना आगे त्याग उसका बढ़ता नहीं। समझ में आया? अन्तर स्वभाव के आश्रय के अवलम्बन बिना पर का – राग का त्याग नहीं होता और उस राग के त्याग बिना उसे दूसरा त्याग सच्चा नहीं होता। समझ में आया?

अन्तरात्मा, पण्डित, शूरवीर, वीर, भेदज्ञानी, लघुनन्दन... समझ में आया? वह परमात्मा का लघुनन्दन है। कहते हैं कि उसका कार्य क्या? अपने पूर्ण स्वरूप शुद्ध आनन्द को जाना और उसका अनुभव किया कि यही आत्मा; इसके अतिरिक्त शुभ अशुभराग, दया, दान, व्रत के परिणाम ये सब परभाव हैं। ऐसा जिसे दृष्टि में से छूट गये हैं, दृष्टि में जिसका त्याग वर्तता है, दृष्टि में जिसके त्रिकाल स्वभाव का आदर वर्तता है। समझ में आया? उसे वास्तव में परभाव का त्यागी (कहते हैं)। यही कहा है न? वह परभाव का त्याग करता है। उसे वास्तव में परभाव का त्याग है। उसे त्यागी कहा जाता है। इसमें समझ में आया?

जहाँ अन्दर में रागादि का आदर वर्तता है, उसने तो सब-पूरा संसार ग्रहणरूप पड़ा है। उसे जरा भी राग का त्याग आंशिक भी नहीं है, वह तो बाहर के निमित्त का असद्भूत व्यवहारनय से त्याग हुआ – ऐसा भी उसे नहीं है। पूर्णानन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त गुण का पिण्ड – ऐसा आत्मा, ऐसे स्वभाव का श्रद्धा में आदर है, वेदन है कि यह आत्मा। शुद्ध की श्रद्धा-ज्ञान द्वारा वेदन द्वारा यह पूरा आत्मा है – ऐसा जिसे स्वभाव का ग्रहण वर्तता है, उसके अतिरिक्त पुण्य-पाप के राग का अन्तर में दृष्टि की अपेक्षा से त्याग वर्तता है उसे पण्डित और ज्ञानी अन्तरात्मा कहते हैं। समझ में आया? बाहर से इतना छोड़ा हो – यह बात यहाँ नहीं ली है।

छह खण्ड का राज्य हो, बाहर में छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, अड़तालीस हजार पाटन, बहत्तर हजार नगर आदि की सामग्री हो, वह सामग्री को जहाँ पररूप दृष्टि में आयी, उस ओर के झुकाव का राग ही जहाँ पर है, मेरे स्वभाव में नहीं; स्वभाव में वह नहीं और उसमें मैं नहीं – ऐसा जहाँ भान आया तो सब दृष्टि में तो उसे त्याग ही है। आहा...हा...! छह खण्ड के राज्य का दृष्टि में त्याग है। धीरुभाई! यह अद्भुत बात।

कहा न? '**चएइ**', '**परभाव चएइ**' कहा न? स्वभाव का आदर करके, स्वभाव को जानकर, अपने को जानकर। '**परियाणइ अप्प परु जो परभाव चएइ। सो पंडिउ अप्पा मुणहिं।**' ये रागादि मेरे नहीं हैं। इस राग के फलरूप बन्धन और बन्धन का फल वह भी मेरा नहीं है। सम्पूर्ण छह खण्ड का राज्य मेरा नहीं है। इन्द्र के इन्द्रासन, सम्यग्दृष्टि को अन्तरात्मा में इन इन्द्र के इन्द्रासनों का दृष्टि में त्याग वर्तता है। समझ में आया? और सम्पूर्ण आत्मा पूर्ण स्वरूप को जानता हुआ उसका आदर वर्तता है। कहो, समझ में आया?

बहिरात्मा में बाहर एक लंगोटी भी न हो, नग्नदशा हो; अन्तर में पूर्णानन्द के नाथ का आदर नहीं और राग के कण का आदर है, उसे सम्पूर्ण चौदह ब्रह्माण्ड के पदार्थों का अन्दर श्रद्धा में आदर है। समझ में आया? उसे जरा भी त्याग नहीं है। आहा... हा...! '**परभाव चएइ**' यह शब्द रखा है न? परभाव छूटे ही नहीं। परन्तु स्वभाव कौन है? – उसे जाने बिना यह भिन्न इस प्रकार छूटे? समझ में आया? प्रौषध, प्रतिक्रमण में बैठा

हो, सामायिक में नाम धराकर... परन्तु अन्दर में पूर्ण शुद्ध अखण्ड आनन्दस्वरूप – ऐसे आत्मा का अन्तर में ज्ञान और आदर नहीं है, वहाँ पर का ही अकेला ज्ञान और आदर वर्तता है। दया, दान, विकल्प आदि का आदर (वर्तता है)। इसलिए उसे परमात्मा का त्याग वर्तता है, उसे परम स्वभाव का त्याग वर्तता है। ऐ...ई... ! परमात्मा का त्याग वर्तता है। परन्तु उसे त्याग है या नहीं ?

ज्ञानी को पूरा राजपाट (होवे), चक्रवर्ती का या इन्द्र का राज (होवे तो भी) त्याग वर्तता है। अभ्यन्तर में स्वभाव की अधिकता की महिमा में, आत्मा के ज्ञान की अधिकता के भान में बाहर के पदार्थ और उसका कारणभाव-शुभाशुभभाव या बन्धभाव-कर्म के रजकण, इन सबका जिसे दृष्टि में त्याग है। लो ! ओ...हो... ! अब यह ऐसा माने कि यह तीर्थंकरप्रकृति बँधती है, इसलिए मुझे लाभ होगा ? और यह शुभभाव होता है, इसमें मुझे भविष्य में लाभ होगा.... जिसे जिस भाव का त्याग वर्तता है, उससे लाभ होगा – ऐसा मानता है ? इस स्वरूप में एकाग्र होऊँगा तो लाभ होगा – ऐसा मानता है। समझ में आया ? कहो, प्रवीणभाई ! ऐसा अद्‌भुत मार्ग !

नग्न मुनि होकर बैठा हो, लो ! कहते हैं कि एक अंश का त्याग नहीं है। त्याग होवे तो उसे अन्दर पूर्ण परमात्मा का त्याग है और भोग होवे तो चौदह ब्रह्माण्ड का उसे भोग है, चौदह ब्रह्माण्ड का (भोग है), जिसे एक राग के कण का आदर है, उसे पूरे चौदह ब्रह्माण्ड का आदर है। यह क्या कहते हैं परन्तु ? '**जो परियाणइ अप्प परु जो परभाव चएइ।**' ऐसे छूटते हैं, दृष्टि में से छूटते हैं। दृष्टि के भाव में से जहाँ स्वभाव आया नहीं और परभाव दृष्टि में से छूटा नहीं, वह बाहर का त्याग करता है (– ऐसा) कौन कहता है ? (–ऐसा) कहते हैं। समझ में आया ?

'**सो पंडिउ**' उसे भगवान पण्डित कहते हैं। समझ में आया ? उसमें (सातवीं गाथा में) ऐसा कहा था न ? '**जिणभणिउ पुण संसारु भमेइ**' भगवान ने ऐसा कहा था कि बहिरात्मा संसार में भटकेगा। यह पण्डित है, वह तो ज्ञानी है, पण्डित है। यह सब आ गया, बारह अंग का सार (आ गया)। आहा...हा... ! बारह अंग और चौदह पूर्व में कहना था, जो वीतरागपने का आदर, राग का आदर नहीं - वह बात इसे आ गयी। वह पण्डित है, जा ! समझ में आया ?

'सो संसार मुएइ' लो! है न अन्तिम शब्द? **वह संसार से छूट जाता है।** देखो! परभाव को दृष्टि में से छोड़ता है। जिसे श्रद्धा में.... श्रद्धा अर्थात् अकेली मान्यता – ऐसा नहीं। जो श्रद्धा में आत्मस्वरूप पकड़ा है, ज्ञान से वेदन पकड़कर पूरा प्रत्यक्ष ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञान में प्रत्यक्ष हो गया है। समझ में आया? इससे आत्मा का कोई रहस्य कुछ बाकी नहीं रहता। स्वरूप दृष्टि में आ गया है और उससे विरुद्ध का त्याग वर्तता है; इस कारण उसे संसार छूट जाएगा, लो! **'सो संसार मुएइ'**। दूसरा संसार में भटकेगा – ऐसा कहा था न? उसके सामने यह। उसमें कहा था **'संसारु भमेइ'**। बहिरात्मा बाह्य चीजों को कर्म की सामग्री को; कर्म की सामग्री अर्थात् समस्त (सामग्री) अल्पज्ञपना, अल्प वीर्यपना, राग-द्वेषपना, संयोगपना, स्त्री, पुत्र, सब हीनपना, दीनपना, सब (अपना मानता है)। समझ में आया? बाहर की चीज से अधिकपना माना और स्वरूप का अधिकपना दृष्टि में से छूट गया, बस! वह संसार में भटकेगा। क्योंकि उसकी अधिकता दृष्टि में से छूट गयी है; इसलिए नये कर्म बाँधेगा और चार गति में परिभ्रमण करेगा। भगवान अन्तर-आत्मा अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप को (अपना मानता है) उसका तो पता नहीं होता और बाह्य त्याग की बातें करना। कहो, अब....

मुमुक्षु – पंचम काल में उससे धर्म होता है।

उत्तर – पंचम काल में धर्म, धर्म की रीति से होता होगा या दूसरी रीति से होता होगा? मुँह से खाते होंगे या कान से खाते होंगे पंचम काल में? हैं? मुँह से खाते हैं? पंचम काल में अन्तर नहीं पड़ता है? मार्ग में कुछ अन्तर पड़ता होगा?

यहाँ तो कहते हैं कि **अपने आत्मा का अनुभव करता है।** देखो, **'अप्पा मुणहिं।'** भगवान आत्मा, शुभाशुभराग के अभावस्वभावस्वरूप पूर्ण ज्ञान, आनन्दस्वरूप है। ऐसे आत्मा को अन्तर आत्मा (अनुभव करता है)। अन्तर आत्मा चौथे गुणस्थान से है या नहीं? है? **अपने आत्मा का अनुभव करता है।** यह चौथे से है या यह अन्तर आत्मा आठवें (गुणस्थान से) है? आहा...हा...! क्या इसमें पाठ है? देखो न! देखो! **'सो पंडिउ'** अन्तर आत्मा की व्याख्या है, **'अप्पा मुणहिं।'** जो ज्ञानी आत्मा है, स्व-पर को जानता है, परभाव को छोड़ता है, वह पण्डित **'अप्पा मुणहिं'** आत्मा को जानता है। जानने

का अर्थ क्या? '**सो संसार मुएइ**'। जानने का अर्थ वह अनुभव करता है। देखो! इन्होंने यहाँ अर्थ किया है। जानने की व्याख्या क्या?

अपने कलश टीकाकार तो यही अर्थ करते हैं। जानने का अर्थ क्या? यह ज्ञान करना चाहिए, अकेला? अन्दर स्थिरता, आत्मा का अनुभव करना, आनन्दस्वरूप का अनुभव (करना), उसे जाना कहा जाता है। आत्मा ऐसा पर में अनादि से स्थिर था, वह दृष्टि बदलकर अन्तर में आया तो स्थिरता के बिना किस प्रकार अन्दर आया? वह अन्तर में स्वरूपाचरण का भाव प्रगट हुआ। अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण प्रगट हुआ। समझ में आया? अभी पण्डितों में इसका बड़ा विवाद चलता है। दूसरे कहते हैं होता नहीं, चौथे में मात्र ज्ञान ही होता है; अनुभव, आचरण तो पाँचवें में होता है। ऐसे पके हैं न! उस थोर (काँटेदार वृक्ष) पर केले पके, यह केले में काँटे पके। समझ में आया?

कहते हैं, **अपने आत्मा का अनुभव करता है...** देखो! शीतलप्रसादजी कितना अर्थ ठीक करते हैं! भगवान आत्मा...! है न उनका श्लोक? इसमें श्लोक है, वह इन्होंने नहीं रखा? इसमें उनका श्लोक इनने नहीं रखा है। इनका बनाया हुआ है वह नहीं। इनने कहाँ बनाया है? यह तो दूसरों ने बनाया है न? वह इसमें नहीं।

'**सो संसार मुएइ**' जो स्वरूप का आदर करनेवाला, शुद्ध चैतन्यवस्तु का अनुभव करनेवाला, परमभाव को छोड़नेवाला बीच में भेदज्ञान होने से क्रम-क्रम से संसार को छोड़ देता है। छूट जाएगा, संसार रहेगा नहीं – ऐसे जीव को पण्डित और ज्ञानी और वीर व शूरवीर कहा जाता है। कहो, समझ में आया? बहुत आधार लिये हैं।

☆ ★ ☆

परमात्मा का स्वरूप

णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु, विण्हु बुद्धु सिवु संतु।
सो परमप्पा जिण-भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु॥९॥

निर्मल-निकल-जिनेन्द्र शिव, सिद्ध विष्णु बुद्ध शान्त।
सो परमातम जिन कहे, जानो हो निर्भ्रान्त॥

अन्वयार्थ – (णिम्मलु) जो कर्मफल व रागादि मल रहित है **(णिक्कलु)** जो निष्फल अर्थात् शरीर होता है **(सुद्धु)** जो शुद्ध व अभेद एक है **(जिणु)** जिसने आत्मा के सर्व शत्रुओं को जीत लिया है **(विण्हु)** जो विष्णु है अर्थात् ज्ञान की अपेक्षा सर्व लोकालोक व्यापी है, सर्व का ज्ञाता है **(बुद्धु)** जो बुद्ध है अर्थात् स्व-पर तत्त्व को समझनेवाला है **(सिवु)** जो शिव है, परम कल्याणकारी है **(संतु)** जो परम शान्त व वीतराग है **(सो परमप्पा)** वही परमात्मा है **(जिणभणिउ)** ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है **(एकउ णिभंतु जाणि)** इस बात को शङ्का रहित जान।

☆ ★ ☆

नौवीं (गाथा) **परमात्मा का स्वरूप।** पहले बहिरात्मा का कहा, दूसरा अन्तरात्मा का कहा, अब परमात्मा का (स्वरूप) कहते हैं।

णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु, विण्हु बुद्धु सिवु संतु।
सो परमप्पा जिण-भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु॥९॥

देखो! इसमें यह आया, हाँ! '**जिणभणिउ**'। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे '**जिणभणिउ**' कहते हैं, यह भी '**जिणभणिउ**' ऐसी सीधी बात करते हैं, हाँ! '**एहउ जाणि णिभंतु**' पहले बहिरात्मा की बात की। वह बहिर, वस्तु जो अन्तर में कायम की चीज है, उसे न मानकर क्षणिक और विकारी और संयोग को स्वीकारता है, वह बहिरात्मा है। अन्तरात्मा, त्रिकाली ध्रुवस्वरूप को – स्वभाव को स्वीकारता है और क्षणिक रागादि का आदर नहीं करता, परभाव को छोड़ता हुआ, अपने स्वरूप का अनुभव करता हुआ संसार से मुक्त होता है।

अब, परमात्मा की बात है। **जो कर्ममल, और रागादि मलरहित है.... 'णिम्मलु'** यहाँ तो राग-द्वेष के मलरहित है। परमात्मा को (अब मल नहीं है)। अन्तरात्मा को अभी राग-द्वेष थे। भिन्न पड़े थे परन्तु पूर्णतः छूटे नहीं थे, पूर्णतः छूट जाये तो परमात्मा हो जाये। दृष्टि से एकत्वबुद्धि से छूटे थे। अन्तर आत्मा में सम्यग्दृष्टि को पुण्य-पाप का भाव एकत्वबुद्धि से छूटा था परन्तु स्थिरता द्वारा पूर्ण छूटा नहीं था। वह यहाँ

(परमात्मपद में) रागादि मल पूर्णत: छूट गये। पहले थे... समझ में आया? उन्हें पूर्णत: (छोड़ा) 'विहूयरयमला' आता है या नहीं? लोगस्स में विहूयरयमला आता है। आठ कर्म के रजकण को और पुण्य-पाप के मलिनभाव को परमात्मा ने विहूय अर्थात् छोड़ा है, उन्हें परमात्मा, उन्हें सिद्ध भगवान कहा जाता है। उन्हें अरहन्त भी कहा जाता है।

'णिम्मलु णिक्कलु' जिन्हें कल नहीं (अर्थात्) शरीर नहीं। लो! यहाँ तो परमात्मा लिये – शरीर रहित। जिन्हें शरीर नहीं, अकेला आत्माशरीर है, अकेला आत्मा का शरीर रहा.... यह शरीर धूल का नहीं रहा, उन्हें परमात्मा कहा जाता है। लो! कोई कहता है, वहाँ भी अभी शरीर होता है। वहाँ भी अभी भगवान की सेवा चाकरी करें। हैं? बैकुण्ठ में जाये तो सेवाचाकरी करे। ऐसे के ऐसे हैं उसके भगवान। यहाँ परोसा हो और उसके साधु को बहुत लड्डू दिये हों (तो) वहाँ भी उसे लड्डू मिलते हैं। वहाँ भी लड्डू और थालियाँ, वहाँ भी नौकरी और चाकर, वह तो संसार रहा, वह का वह।

परमात्मा तो उसे कहते हैं कि जिसे शरीर नहीं, जिसे राग नहीं। सिद्ध परमात्मा शुद्ध अभेद एक व्याख्या की है। वे शुद्ध हैं। अकेले भगवान हैं, उन्हें अशुद्धता बिल्कुल नहीं है। दो पना, उसे अशुद्धता और कर्म आदि कुछ नहीं है। वह नकार किया था। यह शुद्ध एक है, ऐसा।

'जिणु' जिसने आत्मा के सर्व शत्रुओं को जीत लिया.... लो, जिसने सभी शत्रु पहले थे और जीता, और परमात्मा वीतराग हुए, उन्हें परमात्मा और परमेश्वर कहते हैं। लो! यह णमो सिद्धाणं की व्याख्या चलती है। सिद्ध भगवान ऐसे हैं, उन्हें परमात्मा कहते हैं। बाकी कोई जगत का करता है और अमुक है और अमुक है, वह कोई परमेश्वर – वरमेश्वर ऐसा कोई है ही नहीं। **शत्रुओं को जीत लिया....**

'विण्ह' (विष्णु)। ऐसे सिद्ध भगवान को विष्णु कहते हैं। वे विष्णु जगत को रचते हैं, वे विष्णु नहीं। ज्ञान की अपेक्षा से सर्व लोकालोक में व्याप्ते हैं, उसे विष्णु कहते हैं। भगवान परमात्मा एक समय के ज्ञान में तीन काल तीन लोक ज्ञातारूप से जानते हैं, एक समय में युगपत् जानते हैं, एक समय में पूरा जानते हैं, उसे परमात्मा कहते हैं। दूसरे कहते हैं कि वे अनियत को जानते हैं। अनियत को जानते हैं अनियतपने, ऐसा। पढ़ा है

या नहीं ? ऐ... ! देवानुप्रिया ! पढ़ाया है या नहीं वह ? क्या अभी हाँ करते हो ? यह क्रमबद्ध का वहाँ नहीं आया, क्या था उसमें ? हैं, हाँ... ई.... !

मुमुक्षु – शास्त्र में भी नाम नहीं लिखे....

उत्तर – क्या शास्त्र में अनन्त के कितने नाम लिखे ? कितने के नाम लिखें शास्त्र में ? सिद्धान्त, शास्त्र में सिद्धान्त दें कि भाई ! इस अग्नि में से मरकर मनुष्य नहीं होता। समझ में आया ? मनुष्य मरकर अग्नि में जाएगा, परन्तु कौन-सा मनुष्य ? दृष्टान्त तो कितने दें ? दृष्टान्त नहीं दिये इसलिए अनियत है ? ऐसा कहाँ से निकाला ? वाणी में सब आता ही नहीं, वाणी में तो पूरा आता नहीं। सर्वज्ञ की वाणी में भी पूरा नहीं आता। तीन काल तीन लोक जितना ज्ञात हुआ, उतना सब कहाँ से आयेगा एक साथ ? उसके न्याय, उसके समुदाय से पूरा तत्त्व कैसा है – ऐसा आता है। समझ में आया ?

यहाँ तो भगवान परमेश्वर को विष्णु कहते हैं। क्यों ? कि ज्ञान की अपेक्षा से सर्व लोकालोक व्यापी.... कोई सामान्य विशेष जानने का बाकी नहीं। भविष्य का कोई समय उन्हें बाकी नहीं कि इस समय में ऐसा आवे तो होगा, नहीं तो नहीं होगा – ऐसा भगवान को (नहीं है)। ऐसा वे सर्वज्ञ को नहीं मानते।

मुमुक्षु – संयोग कौन सा आवे यह निश्चित नहीं ?

उत्तर – कहाँ सब निश्चित नहीं ? ऐसे और ऐसे पके हैं, हैं ?

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव – गुण, राजनीति में चार। त्रास बिना प्रभु जड़ चेतन की कोई न लोपे काल। सारी दुनिया तीन काल तीन लोक भगवान का ज्ञान उस प्रकार परिणमित हो रहा है। उसमें कोई अनियत बाकी होगा ? भविष्य की कोई पर्याय, पानी को अग्नि आवे तो गर्म होगा, न आवे तो नहीं होगा – ऐसा होगा या नहीं ? हैं ? रतिभाई ! कैसा होगा ? कैसा नहीं होगा ? अग्नि का संयोग मिला नहीं, तो ? पानी गर्म नहीं होगा, लो ! परन्तु जिसे गर्म होने का काल है, उसे अग्नि का निमित्त वहाँ नहीं है – ऐसा कौन कहता है ? दोनों निश्चित हो गये हैं, अनादि से सब निश्चित है। जहाँ पर्याय जो होनी है, वहाँ उस पर्याय को अनुकूल निमित्त सामने होता ही है। समझ में आया ?

मुमुक्षु – उपादान तैयार हो और निमित्त न हो तो..... ?

उत्तर – निमित्त न हो यह प्रश्न ही नहीं है। एक कारण हो और दूसरा कारण न हो – यह बात ही झूठी है। समझ में आया ? ऐसे भगवान ने समस्त कारणों को एक साथ देखा है, इसमें आगे-पीछे भगवान के ज्ञान में कुछ नहीं है। भगवान के ज्ञान में लोकालोक ज्ञात हो गया है, भूत-भविष्य और वर्तमान तीन काल सब ज्ञात हो गये हैं।

मुमुक्षु – उसमें पुरुषार्थ मारा जाता है।

उत्तर – इसी में पुरुषार्थ है। भगवान ने जो जाना, उनकी सर्वज्ञदशा इतनी – ऐसी सर्वज्ञदशा की पर्याय का स्वीकार करने जाये, तब उसके द्रव्यस्वभाव में, ज्ञायकस्वभाव में दृष्टि पड़े बिना उसका स्वीकार नहीं होता। समझ में आया ? भगवान की एक समय की एक ज्ञान की पर्याय इतना – तीन काल तीन लोक ज्ञाता, युगपत्रूप से जाने सचराचर... ऐसे ज्ञान का स्वीकार, वह क्या राग से कर सकते हैं ? राग के आश्रय से स्वीकार होता है ? यह पर्याय से स्वीकार होता है परन्तु पर्याय के आश्रय से स्वीकार होता है ? समझ में आया ?

भगवान सर्वज्ञप्रभु अकेला ज्ञ-मूर्ति प्रभु, ज्ञ-मूर्ति अर्थात् सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा का आश्रय लिये बिना सर्वज्ञ की पर्याय का निर्णय नहीं होता। यह निर्णय होने पर उसे क्रमबद्ध का (निर्णय होता है) और वीतरागी पर्याय प्रगट हो गयी। सब निर्णय हो जाता है, यही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ कहीं अलग है क्या ? अन्तर की झुकावदशा कर्तृत्व में थी, वह अन्तर में अकर्तृत्व में गयी, वह पुरुषार्थ है। समझ में आया ?

एक राग का भी कर्ता नहीं। अनन्त संयोग पदार्थ में अपनी उपस्थिति के कारण वहाँ फेरफार होता है – ऐसा वह नहीं मानता। वह तो, मेरी उपस्थिति मुझमें है, उनकी उपस्थिति उनमें है, उनसे होता है – ऐसा जानता हुआ पर का कर्ता नहीं होता। कहो, समझ में आया ? पूरे साँचे (मशीन) को ऐसे हिलावे....

मुमुक्षु – पर का भले न करे परन्तु पर में निमित्त तो होता है न ?

उत्तर – किसे निमित्त होता है ? यह मानता है कि मैं वहाँ जाकर निमित्त था ? क्या

कहा समझ में आया ? वहाँ होवे, तब सामने की चीज को निमित्त कहते हैं ? कि तू वहाँ निमित्त होने जा ? किसी को भी निमित्त होने जा ? उसकी पर्याय का काल नहीं और तू निमित्त होने जाये कब ? ऐसे सूक्ष्म काल में निमित्त होना - ऐसा कहा है ? वहाँ कार्य हो तब साथ में हो उसे निमित्त (कहते हैं) उसके ज्ञान में आवे कि साथ में एक चीज है। यह तो क्रमबद्ध नियम हो गया। समझ में आया ?

मुमुक्षु - होवे ही न निमित्त ?

उत्तर - परन्तु होवे कौन ? कौन हो ? ए... प्रवीणभाई ! दूसरे को निमित्त, किसको निमित्त परन्तु ? वह निमित्त किस पर्याय का है, वह निमित्त वहाँ होता है ? उसे पता है कि यह पर्याय अभी हुई और यह निमित्त इसे है ? असंख्य समय पहले इसे विचार आवे कि मैं ऐसा निमित्त होऊँ परन्तु निमित्त किसका ? जो नैमित्तिक पर्याय का उसका काल नहीं उसमें तू निमित्त हो, उसका अर्थ क्या ? समझ में आया ? निमित्त होऊँ, यह तो अज्ञानी का भ्रम है। यह तो वहाँ पर्याय काल होता है, तब जो हो उसे एक समय के काल की अपेक्षा से उसे निमित्त कहते हैं, एक समय की अपेक्षा से। और यह कहता है मैं वहाँ निमित्त होऊँ.... उसका अर्थ, असंख्य समय का तेरा उपयोग, उसे निमित्त होऊँ अर्थात् किसका निमित्त परन्तु ? किस पर्याय का निमित्त ? किस पर्याय का निमित्त ? बड़ा भ्रम। धीरुभाई ! आहा...हा... ! सब ऐसा कहते हैं कि वहाँ के सब मूर्ख हैं। ऐसा भी कहते हैं। वे तो स्वतन्त्र हैं न ! स्वतन्त्र हैं। उन बेचारों को उनकी जवाबदारी का पता नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं.... समझ में आया ? भगवान को विष्णु कहा जाता है। परमात्मा अर्थात् विष्णु, हाँ ! परमात्मा अर्थात् विष्णु। विष्णु अर्थात् परमात्मा ऐसा नहीं। यह परमात्मा ऐसे होवें, वे एक समय में तीन काल-तीन लोक जानें, उन्हें विष्णु कहा जाता है। सर्वज्ञ परमेश्वर को विष्णु कहा जाता है। जगत का कर्ता-हर्ता अन्य कोई विष्णु नहीं है। इन्हें (भगवान को) परमात्मा कहा जाता है।

बोध.... लो ठीक ! '**णिम्मलु**' कहा। '**णिक्कलु**' कहा, '**सुद्ध**' कहा। इतने तीन बोल लिये और '**जिणु**' कहा। जिन से शुरु किया... फिर विष्णु लिया फिर बुद्ध लिया.. वह बुद्ध **स्वपर तत्त्व को समझनेवाला बुद्ध...** लो, उसे बुद्ध कहते हैं। क्षणिक को माने,

वह बुद्ध नहीं। बुद्ध अर्थात् स्व-पर के तत्त्व को भेद डालकर जाने, उसे बुद्ध कहते हैं। परमात्मा अपने स्वरूप को पूर्णरूप जानते हैं, इसके अतिरिक्त लोकालोक है, उसे वे जानते हैं। स्व-पर के जाननेवाले, वे सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर तीर्थंकर या सिद्ध भगवान उन्हें यहाँ शुद्ध कहा गया है। दूसरे बौद्ध जो देव हैं, वे बुद्ध नहीं। वह तो अज्ञानी था, क्षणिक को माननेवाला था।

यह तो भगवान परमेश्वर, जो स्व-पर तत्त्व को समझनेवाला – स्व परमात्मा मैं – ऐसा केवलज्ञान में ज्ञान है और यह सब मुझसे पर है – ऐसा उनमें ज्ञान है। दोनों चीज का पूरा-सम्पूर्ण ज्ञान है, उसे बुद्ध कहा जाता है। अन्य तो कहते हैं कि आत्मा त्रिकाल है या नहीं? यह मैं नहीं कहता, यह हम नहीं कहते। आत्मा नित्य है या नहीं? यह अपने को पता नहीं पड़ता। इस काम में पड़ना नहीं। कहो, ठीक! त्रिकाल शाश्वत् है, इस काम में पड़ना नहीं! ऐसी जाति की दृष्टि घुट गयी, दृष्टि घुट गयी। वह मनुष्य को राजा का कुँवर था। राजकुमार परन्तु वैराग्य से आया हुआ, बाहर से दुःखी.... दरिद्र दुःख और दरिद्र और मरण वह इनके दुःख से ऐसा.... अन्दर अस्तित्व पूरा कौन है? उस पर लक्ष्य गया नहीं और वहीं का वहीं मर गया, देह छूट गया। समझ में आया?

'**सिव**' लो, '**सिव**'। ऐसे परमेश्वर को शिव कहते हैं जिन्होंने राग-द्वेषरहित, शरीररहित पूर्ण शुद्धदशा प्रगट की है, उन्हें शिव कहते हैं। शिव अर्थात् परम कल्याणकारी। परम कल्याणकारी। वह परम कल्याण करनेवाला स्वयं परमात्मा को कहते हैं। उन्होंने स्वयं का पूर्ण स्वरूप, पूर्ण कल्याणमय प्रगट किया। '**सिव**'.... णमोत्थुणम में आता है – शिव आता है न? शिव 'सिवमलयमरुयमणंत' शिवम्, अलयम, अरुयं, ऐसा शब्द है। 'अचलम्अरुयम्' रोगरहित ऐसे परमात्मा को विष्णु कहते हैं, उन्हें बुद्ध कहते हैं, उन्हें जिन कहते हैं, उन्हें शिव कहते हैं – ऐसी दशा प्रगटी हो उन्हें। हैं? समझ में आया? परम कल्याणकारी।

'**संतु**' शान्त, वीतराग। परम शान्त वीतराग, परम अकषाय परिणमन से, पूर्ण अकषाय परिणमन से भगवान परमात्मा को अकेली शान्तरस की पूर्ण धारा वीतरागरूप परिणमित हो गयी है। शान्त... शान्त... शान्त... शीतल स्वभाव जिनका, वीतरागी अकषाय

स्वभाव, जिनकी पर्याय में **संतु** – पूर्ण शान्ति, वीतराग पर्यायरूप परिणमित हुए हैं, उन्हें शान्त कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु – कुछ न बोलते हों (उन्हें शान्त कहते हैं)।

उत्तर – न बोलता हो तो क्या करे ? न बोलता हो तो वह तो प्रकृति का स्वभाव है। कषाय मन्द हो और न बोलता हो और मौन रहे तो उससे कहीं शान्त है ?

अकषायस्वभाव से परिणमित होकर वीतरागी सन्त हो गये। शान्तदशा का परिणमन (हुआ) उसे शान्ति कहते हैं, उसे वीतराग कहते हैं। **'सो परमप्पा'** लो ! उसे परमात्मा कहते हैं। समझ में आया ?

तीनों आत्मा की व्याख्या हुई – बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा – ऐसी व्याख्या सर्वज्ञ परमात्मा के सिवाय अन्यत्र नहीं हो सकती। पर्याय में पलटते हैं, बहिरात्मा हो सकते हैं, वे अनादि से, स्वयं के कारण अन्तरात्मा हो सकते हैं, अपने पुरुषार्थ से परमात्मा हो सकते हैं। शक्ति की व्यक्ति के पुरुषार्थ से... यह सब द्रव्य और पर्याय का जहाँ परिपूर्ण स्वीकार हो, वहाँ यह वस्तु सम्भव हो सकती है, अन्यत्र नहीं हो सकती। कहो, समझ में आया ? **वही परमात्मा है। 'जिणभणिउ'** ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। लो ! समझ में आया ?

इस बात को शंकारहित जान। 'णिभंतु जाणि' ऐसा कहा है न ? ऐसा जान। **'णिभंतु'** – भ्रान्ति छोड़ दे कि दूसरा कोई भगवान होगा। कोई ब्रह्मा उत्पन्न करनेवाला, कोई विष्णु रक्षा करनेवाला, कोई शंकर टालनेवाला.... हैं ? ऐसे महेश, शंकर वह महेश – ऐसा कोई नहीं है। निर्भ्रान्त होकर ऐसे परमात्मा को जान। परमात्मा ऐसे होते हैं, ऐसे अनन्त परमात्मा हैं। सिद्ध भगवान अनन्त हैं। यदि तुझे परमात्मा होना हो तो तू परमात्मस्वरूप जो तेरा है, उसे जान और राग-द्वेष को छोड़; तो परमात्म शक्ति तो तुझमें अभी पड़ी है। परमात्मा कहीं बाहर से नहीं आते। समझ में आया ?

ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। इस बात को शंकारहित जान। निर्भ्रान्त हो जा, निसन्देह हो जा, निर्भय हो जा ! वस्तु ऐसी ही है। इसके सिवाय कोई परमात्मा सत्य नहीं हो सकता। उन्हें शरीर नहीं होता.... होता। जिन्हें कुछ खाने-पीने की वृत्ति नहीं होती। भगवान को खाना-बाना नहीं होता भगवान फिर खाये और फिर थाल चढ़े, किसका ?

थाल चढ़ते हैं या नहीं ? जीमने का थाल.... ऐसा कुछ आता है न ? 'जमोने थाल जिवण मोरारी....' ऐसा आता है। सब सुना है। 'जमोने थाल जिवण मोरारी....' परन्तु किसका थाल ? भगवान को थाल कैसा ? भगवान को भोजन कैसा ? वे तो अनन्त आनन्द का भोजन प्रति समय कर रहे हैं। परमात्मा अनन्त अमृत का अनुभव कर रहे हैं, उन्हें फिर दूसरा भोजन-फोजन कैसा ? समझ में आया ?

तू निर्भ्रान्त ऐसे परमात्मा को जान! इसके अतिरिक्त कोई सच्चा भगवान नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया ? फिर कोई ऐसा कहते हैं न ? भगवान अपना सब हिसाब रखते हैं। हैं ? यहाँ का जो काम करे, उसे तो याद न हो अल्पज्ञ प्राणी है, दूसरे परमात्मा उसका हिसाब रखे, हिसाब.... धर्म राजा बहियाँ देखता है फिर लेना-देना लिखकर इसे नरक में भेजता है। कितने का काम करता होगा ? चित्रगुप्त का चौपड़ा/बहियाँ.... कितनी बहियाँ रखता होगा ? एक समय में अनन्त मरते, निगोद के जीव एक समय में अनन्त मरते हैं और एक समय में अनन्त उत्पन्न होते हैं। वे अनन्त कितने ? समझ में आया ? पार नहीं... सिद्ध से अनन्तगुने जीव। आहा...हा...! उनकी बहियाँ कितनी रखते होंगे ? यहाँ दो बहियाँ रखने में परेशानी आ जाती है। एक काले बाजार का और एक वह अच्छा साफ-सुथरा। दो रखते हैं न ? दो प्रकार की बहियाँ, दूसरे को बताने को दूसरा और दूसरे को बताने को वह। उसमें तो परेशानी आ जाती है।

मुमुक्षु – उसमें तो.....

उत्तर – वहाँ कहाँ भगवान ऐसा था ? वे किसी का नामा-थामा नहीं करते। इसका नामा है सही बात, सत्य, हाँ! भगवान के ज्ञान में लेखा है कि यह जीव इस भव में मोक्ष जाएगा – ऐसा लेखा है। नौंध है, भगवान के ज्ञान में नौंध है। आहा...हा...! भगवान के ज्ञान में नौंध है, वह रोजनामचा है उन्हें यह ज्ञान में। यह जीव इस भव में (केवल) ज्ञान प्राप्त करेगा, इतने भव में मोक्ष जाएगा। ऐसा भगवान के ज्ञान में नौंध है। तदनुसार वहाँ जाएगा। दूसरा होगा नहीं, उसके बदले वह कहता है नौंध कर रखी है, बहियों में लिखा है – ऐसा नहीं। ऐसे परमात्मा को परमात्मा जानना (जिसे) आत्मा का हित करना हो, उसे इस प्रकार पहचान करना।

(श्रोता – प्रमाण वचन गुरुदेव)